चल हंसा उस देश-प्रवचन-के पूर्व भूमिका

उस देश की भूमि

एक दुनिया है जिसमें सब सामान्यजन जीते हैं, कहना चाहिए कि सभी जीते हैं। उन्हें हम गृहस्थ कहते हैं। समूची दुनिया ही उन्हीं की है। लेकिन इस दुनिया के भीतर एक और छोटी-सी दुनिया है जिसमें कुछ इक्का-दुक्का मुट्ठी भर लोग जीते हैं। उन्हें हम संन्यासी कहते हैं। वे भी इस दुनिया में जीते हैं लेकिन वे इस दुनिया के नहीं होते। वे इस दुनिया में रहते हुए भी किसी और देश के वासी होते हैं। मेरा अभिप्राय किसी अन्य लोक-परलोक से नहीं है, बल्कि ऐसे लोक से है जो हम सबके भीतर, हमारे अंतस केंद्र पर स्थित है। जो व्यक्ति बाहर के घरों में, बाहर की सुरक्षा में उलझा है, लिप्त है वही गृहस्थ है। और जो व्यक्ति अपने अंतर-आकाश की निस्सीमता में सदा उड़ान भरता है- बाहर के सब मानसिक बंधनों से मुक्त होकर- वही संन्यासी है। इस पुस्तक में उसी हंस को उसी उन्मुक्त आकाश में प्रवेश का निमंत्रण है।

लेकिन इसी पुस्तक में श्री रजनीश ने हमें सजग करते हुए उद्बोधन दिया हैः जिनको आप संन्यासी कहते हैं उनको मैं संन्यासी नहीं कहता। जिनको आप गृहस्थ कहते हैं उनको मैं गृहस्थ नहीं कहता। मैं तो सारी दुनिया को ही गृहस्थ मानता हूं। उन गृहस्थों में से कुछ लोग रूपांतरण को उपलब्ध होकर संन्यास को पाते हैं। लेकिन वह संन्यास कोई वस्त्रों से संबंधित है।

यहां श्री रजनीश जिस संन्यास की बात कर रहे हैं उसका वस्त्रों के परिवर्तन से कुछ लेना-देना नहीं है। उसका लेना-देना है अंतस के आमूल रूपांतरण से। लेकिन अतीत में- और अभी भी- संन्यास केवल वस्त्रों का परिवर्तन बन कर रह गया है। भविष्य में ऐसा संन्यास टिकने वाला नहीं है। श्री रजनीश का कहना है कि कुछ थोड़े से संन्यासी रह जायेंगे और उन संन्यासियों की कोई वेशभूषा नहीं होगी। हमेशा थोड़े से संन्यासी हुए हैं दुनिया में- यह सच है। लेकिन लाखों की संख्या में जो दिखाई पड़ रहे हैं, इनमें संन्यासी नहीं हैं, न हो सकते हैं। संन्यासी बड़े थोड़े इक्के-दुक्के हैं।

और ऐसे इक्के-दुक्के दुस्साहसी लोग ही श्री रजनीश के सान्निध्य में आकर संन्यस्त हुए हैं। उनके लिए श्री रजनीश का संदेश है : "मैं चाहता हूं मेरा संन्यासी पूरा मनुष्य हो, अखंड मनुष्य हो। उसमें मरुस्थल जैसी शांति भी हो, सन्नाटा भी हो और विस्तार भी हो; बगिया जैसे फूल भी हों, झरने भी हों। कोयल भी बोले, पपीहा भी पुकारे। वह अपने को जाने और विराट को भी। कभी आंख बंद करके जाने, कभी आंख खोल कर जाने; क्योंकि बाहर भी वही है भीतर भी वही है। ध्यान से भीतर को जाने, प्रेम से बाहर को जाने।"

इस प्रकार का संन्यास ही सार्थक संन्यास है। उसी संन्यास में ही संन्यास के फूल खिलते हैं। श्री रजनीश ने ऐसे सफल संन्यास के संबंध में कहा हैः "मेरा संन्यास वसंत है। मेरा संन्यास फागुनमास है। मेरा संन्यास फूलों की भांति है। यह जीवन का उत्सव है। यह परमात्मा के प्रति धन्यवाद है, अनुग्रह का भाव है। यह त्याग नहीं है। यह भोग नहीं है। यह त्याग और भोग दोनों का अतिक्रमण है। यह इस भांति भोगना है कि भोगो भी और बंधने भी न पाओ। गुजरना है ऐसे संसार से कि गुजर भी जाओ और संसार की धूल तुम पर जमने भी न पाए। संसार

तुम्हें छूने भी न पाए, अछूते निकल जाओ। गीत गाते हुए निकल जाओ। यह कोई रोता हुआ संन्यास नहीं है। यह कोई उदासीन नहीं है। यह नाचता हुआ संन्यास है।

यह तो एक नृत्य है, एक उत्सव है, एक महारास है! तैयारी हो जीवन के आनंद को अंगीकार करने की, तो आओ, द्वार खुले हैं; तो आओ, स्वागत है; तो आओ, बुलावा है, निमंत्रण है।"

निमंत्रण है सब हंसों को- उस अनूठे देश के लिए, उस अनूठी भूमि के लिए! चल हंसा उस देश!

स्वामी चैतन्य कीर्ति

संपादक : रजनीश टाइम्स इंटरनेशनल